# काश! तुम समझ पाते

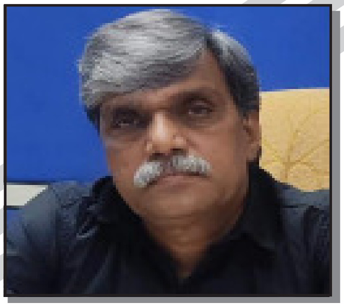

**डॉ. पूरन सिंह**
**जन्म:**10 जुलाई, 1964,
मैनपुरी. उत्तर प्रदेश
**शिक्षा:** एम.ए.(अंग्रेजी-हिन्दी)
पी.एच.डी
**पुरस्कार/सम्मान :** विभिन्न प्रतिष्ठित साहित्यिक संस्थाओं द्वारा अनेक सम्मान और पुरस्कार तथा हिंदी अकादमी दिल्ली द्वारा कहानी 'नरेशा की अम्मा उर्फ भजोरिया' पर श्रीराम सेंटर दिल्ली में नाट्य मंचन
**कृतियां:** : 9 कहानी संग्रह तथा 11 लघुकथा संग्रह, 3 कविता संग्रह तथा विशेषांकों का संपादन।
संपर्क : 240 एवं 935डी
बाबा फरीदपुरी, वेस्ट पटेल नगर,
नई दिल्ली-110008
फोन : 9868846388

गांव से बड़े भैया का फोन आया कि धनकुनि चाची नहीं रहीं।

धनकुनि चाची अम्मा की सहेली थीं। मैया-बहनियां के धरातल पर अम्मा का उनसे बहुत लगाव था और चाची का अम्मा से। धनकुनि चाची धनकुनि थी अर्थात् वह महिला जो गर्भवती स्त्रियों के बच्चे पैदा कराती हो। अम्मा जब जीवित थी तब बताया था कि मुझे धनकुनि चाची ने ही पैदा करवाया था इसलिए वे चाची कम, अम्मा ज्यादा थीं मेरे लिए। जब मेरी शादी होकर आयी थी तो मेरी पत्नी ने अन्य औरतों के साथ-साथ धनकुनि चाची के भी पैर छुए तो अम्मा की सहेलियों ने आपत्ति की थी, 'ये जिजी, बहू को बताओ नाय थो का, जा धनकुनियां के पैर छू लए बहू ने।' अम्मा ने सिर्फ इतना ही कहा था, 'वे हमारी सहेली हैं जायकी वजह से बहू ने पैर छुए।' अम्मा की सहेलियां संतुष्ट नहीं हुई थीं। बात आई-गई हो गई थी।

दरअसल, धानुकों और जाटवों में जाटव श्रेष्ठ और ऊंचे माने जाते हैं। हिंदू धर्म व्यवस्था तो यही कहती है जहां गोत्र, वर्ण के आधार पर लोग श्रेष्ठ होते हैं वहां जाति तो बहुत महत्वपूर्ण होती है। वैसे जितना मैं जान पाया हूं वर्ण व्यवस्था के आधार पर, तो वह यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के अलावा जितनी जातियां है वे सब शूद्र हैं उनमें ऊंच नीच का क्या मतलब। अगर मेरे जानने भर से काम चल जाए, ऐसा कैसे हो सकता है। जाटवों में भी चमार, दोहरे, कुरील न जाने कितनी बीमारियां है वैसे ही अन्य जातियों में भी हैं। ये सब इसलिए कि किसी भी तरह से लोग एक न हो पाएं। और इन सब का सरगना है ब्राह्मण। ब्राह्मण समाज में कभी भी लोगों में एकता नहीं चाहता। सीधा अर्थ उसका यह है कि अगर लोग एक हो जाएंगे तो उसे कौन पूछेगा और उसे अपनी पूछ की बड़ी चिंता है। वह खाता ही इसी का है। खैर...! तो धनकुनि चाची नहीं रहीं और भावनात्मक आधार पर मुझे चाची के अंतिम दर्शन करने जाना होगा।

मैंने दो दिन की छुट्टी ली और चल दिया था। पहले चाची के घर

गया, अपने घर बाद में। चाची के दर्शन किए। आंखों में नमी जायज थी। मां भी नहीं थीं, आज मां की सहेली भी नहीं रही अर्थात् मां धीरे-धीरे कम होती चली जा रही थी।

चाची, अर्थात् धनकुनि चाची का जब अंतिम संस्कार हो गया तो मैं दोपहर को मार्केट घूमने चला गया था। सर्दियों के दिन थे। मैं बाजार में था। ये वही जगह थी जहां एक दुकान के बाद दूसरी दुकान पर जाने के लिए समय लगता था। एक-एक दुकानदार को लोग जानते थे और आज... आज वहीं, मल्टीस्टोरीज शॉपिंग काम्पलैक्स थे। कोई किसी को नहीं जानता था अगर संबंध था भी तो केवल अर्थ (धन) के आधार पर था।

मैं देख रहा था कि कुछ-कुछ जाना पहचाना-सा एक आदमी मुझे दिखाई दिया। उसने धोती पहन रखी थी और उसके ऊपर लंबा-सा कुर्ता। गले में रुद्राक्ष की तीन-चार मालाएं। लंबे से बाल। हाथों में लाल-पीले अनगिनत धागे। माथे पर नाक को छूता तिलक। बहुत दिमाग दौड़ाता रहा फिर थोड़ा-सा क्लिक हुआ। अच्छा पीताम्बर है। हिम्मत करके उसे बुलाया, 'सुनो!'

'जी', वह मेरे पास आया।

'तुम पीताम्बर हो?'

'हां और तुम?'

'पहचानो,' मैं बोला और खुश भी हुआ कि कम से कम पहचानने में मुझसे चूक तो न हुई। वह जोर देता रहा फिर बोला, 'अच्छा! तो तुम हो।'

'कौन', मैं जानबूझकर बन रहा था।

'मोहन', वह बोला।

'हां' मैं संतुष्ट हुआ कि उसने मुझे पहचान तो लिया।

बस फिर क्या था।

'साले इतनी देर से सवाल किए जा रहा है। सीधे नहीं बोला जाता कि तू मोहन है।' फिर विनम्र होते हुए बोला था, 'हां, ठीक है भाई तू काहे को पहचानेगा, अफसर हो गया है। मेरे जैसे गरीब निर्धन ब्राह्मण को कैसे पहचानेगा।'

अब मेरी बारी थी और मैं चूकने वाला था भी नहीं, 'अरे चूतिए, बता जरा तुझे रोका किसने था। तू तो उल्लू की तरह मुंह ऊपर किए जा रहा था। मैंने ही तुझे पहचाना साले और बातें करता है।'

उसने कुछ नहीं कहा। बस देखता रहा फिर गले लग गया। हम दोनों की पलकें भीग गई थीं। एक पल के लिए हम दोनों गले लगे रहे। पीताम्बर ब्राह्मण होने के साथ-साथ अच्छा इंसान भी था। सच्चा और निश्छल। मित्र और हमदर्द।

दरअसल, पीताम्बर और मैं कच्चे एक से साथ-साथ पढ़े थे। पीताम्बर को छोटा 'अ' बड़ा 'आ' लिखना भी नहीं आता था। वह जब पट्टी पर छोटा 'अ' बड़ा 'आ' लिखकर मास्टर साहब को दिखाने जाता तो खूब कूटा जाता। वह पिटता तो मुझे दुख होता। तब वह ब्राह्मन नहीं होता था वह सिर्फ मेरा दोस्त होता। हम लोग इस जाति के समीकरण की परिधि से दूर होते थे। मैंने उसे पूरी इमला अर्थात 'अ' से लेकर 'ज्ञ' तक लिखना सिखाया था उसका हाथ पकड़कर। वह इतना निश्छल था कि मेरी पट्टी को खूब साफ कर देता था। अच्छी-अच्छी चीजें लाकर खिलाता। हम दोनों आपस में जीभ भी लड़ाते थे। और पेशाब करने जाते तो पेशाब की धार को भी लड़ाते। कई बार जानबूझकर एक-दूसरे की ओर धार कर देते। और यही सब शैतानियां करते-करते हम छठवीं कक्षा में पहुंच गए थे। अब हम दोनों को अपनी अपनी जाति का समीकरण समझ में आने लगा था लेकिन आने ही लगा था फर्क कुछ नहीं पड़ रहा था।

पीताम्बर की मैं पढाई में कितनी मदद करता। कितना उसको नकल टिपाता। आखिरकार मैं हार ही गया। हुआ ये था कि मैंने उसकी अंग्रेजी के पेपर में मदद की और मैं पकड़ा गया। मैं पकड़ा नहीं जाता। पीताम्बर के गांव के एक लड़के ने मास्टर साहब से हम दोनों की चुगली खा ली, 'सा'ब मोहन ही पीताम्बर को नकल कराता है। पीताम्बर को कुछ नहीं आता। गधा है।'

सालाना के पेपर थे। तब दो बार ही पेपर होते थे। छ:माही और सालाना। अंग्रेजी का पेपर था। मैंने अपना तो लिख लिया था। पीताम्बर का ए फार एप्पल और बी फोर बेट लिख रहा था। मास्टर साहब ने मुझे रंगे हाथों पकड़ लिया। पहले तो खूब उचेला फिर मुझसे पूछा था, 'बोलो, क्या चाहते हो।'

'क्या साहब', मैं हाथ बांधे खड़ा था।

'फेल होना या पास होना।' मास्टर साहब न्यायाधीश बने हुए थे।

'पास होना', मैं बोला था।

'तुम या पीताम्बर।' मास्टर साहब ने शर्त रख दी थी फिर बोले थे, 'देखो तुम पीताम्बर की कापी लिख रहे थे। उसे नकल कराने के कारण मैं तुम्हें फेल कर दूंगा। पीताम्बर को पास कर दूंगा। अब तुम देख लो, क्या चाहते हो।'

'साहब हम दोनों को पास कर दो। पीताम्बर मेरा दोस्त है। हम उसके बिना अकेले रह जाएंगे। साब।' और मैं मास्टर साहब के पैर छूकर रोने लगा था।

पीताम्बर पहले से ही रो रहा था।

'ये नहीं होगा। मैं तुम्हें फेल कर देता हूं। पीताम्बर को पास कर देता हूं। काम खत्म।' वे उठने लगे थे कि. ..कि...पीताम्बर बोला था, 'साब मुझे फेल कर दो। मुझे कुछ आता ही नहीं। मेरे दोस्त को पास कर दो। वह तो मेरी मदद कर रहा था। मैं पढ़ने में कमजोर न होता तो आज...।' और पीताम्बर बिलख-बिलखकर रोने लगा था।

मास्टर साहब चले गए थे। लेकिन मास्टर साहब के चले जाने से क्या होना था। मुझे पहली बार अपने मित्र पीताम्बर पर गुमान हुआ था। 'तुमने ऐसा क्यों कहा। तुम्हें यहां तक मैं कैसे लाया। तुमने सब गू का लीपन कर दिया। अब तुम कैसे आगे बढ़ोगे। तुम्हें कौन नकल कराया करेगा। देखना तुम छठवीं से आगे जा ही नहीं पाओगे। जाओ यार।' कहकर मैंने उसे अपने से दूर करने की कोशिश की थी। वह दूर नहीं हुआ था।

'मेरा क्या है। मैं तो पढ़ने में गोबर हूं। तुम्हारी साल चली जाती। मास्टर साब मानते नहीं। तुमने मेरे साथ कच्चे एक से लेकर आज तक किया, उसका क्या। भगवान जी मुझे कभी माफ नहीं करते। विद्यारानी का पाप लगता सो अलग।' हम दोनों एक-दूसरे से मिलकर खूब रोते रहे थे। रोने से तकदीरें नहीं बदलती। पीताम्बर की भी नहीं बदली थी। पीताम्बर छठवीं में फेल हो गया था और ऐसा फेल हुआ कि बस...।

मैं छठवीं से सातवीं, आठवीं, ग्यारहवीं, इण्टर, बी.ए., एम.ए. करके नौकरी पर आ गया था।

पीताम्बर ने पढ़ाई छोड़ दी थी।

वही पीताम्बर आज मेरे गले लगकर सिसक रहा था। सैलाब तो दोनों तरफ ही था। कुछ देर बाद हम दोनों हटे। हटे क्या पीछे से गाड़ी वाले ने पोंपों-पोंपों शुरू कर दी थी।

आंखें पोंछी हम दोनों ने।

'अच्छा बता कैसा है?' मैंने ही शुरुआत की।

'खूब मस्त।'

'क्या करता है। कैसे गुजर-बसर होती है।' मेरे मन में था कि पढ़ तो सका ही न था। परेशानी में होगा।

'पहले तू बता,' पूछा था उसने, फिर अपने आप ही बोला था, 'रामसनेही बता रहा था बहुत बड़ा साब बन गया है। सुना है गाड़ी लेने आती है ऑफिस से।'

'और क्या-क्या सुना है।' अब हम एक बंद दुकान के सामने खड़े थे।

'भौजाई भी प्रन्सिपल है।'

'और बता।' मैंने पूछा था।

'गांडू! मेरी याद तो आती नहीं होगी। कोई कह रहा था ब्राह्मणों से बहुत सड़ता है। उल्टा-सीधा लिखता रहता है ब्राह्मणों के बारे में।' फिर रुक कर बोला था, 'साली ये जाति है ही ऐसी।'

मैंने पूछा था 'कैसी'

'किसी की सगी नहीं।' कहकर मन में छिपी पीड़ा हाहाकार करने लगी थी उसके। शायद वह भूला नहीं था कि उसकी और मेरी शिकायत करने वाला उसके गांव का उसका साथी ब्राह्मण ही तो था।

'नहीं! ऐसा नहीं सोचते। ऐसा होता तो तुझे मैं आज तक क्यों नहीं भूल पाया।' मैं बोला था।

'गांडूपंती मत दे। भुला पाया। साले, याद ही कब किया तूने। मैं ही लोगों से पूछता रहता था तेरे बारे में। तूने पूछा किसी से। बातें मत बना ज्यादा।' उसके ऐसा कहने पर मैंने उसको गाल पकड़कर खींचते हुए पूछा था, 'गुस्सा दिखा रहा है।' वह छोटे पर ऐसे ही किया करता था, जब मजा लेने के लिए, मैं उसकी पट्टी पर नहीं लिखता था।

वह मुस्कुराया था।

मुझे अच्छा लगा।

'अच्छा अब तो बता कैसा है... भाभी कैसी है... बच्चे कितने हैं... घर परिवार का भरण-पोषण कैसे चलता है।' मैं चिंतित था उसकी ओर से।

'तुझे भरण-पोषण की बड़ी चिंता है... तो सुन।' पीताम्बर ने बताना शुरू किया था, 'छठी में तीन बार फेल होने के बाद मैंने पढ़ाई छोड़ दी।' अभी उसने बताना शुरू ही किया था कि मैंने बीच में टोका, 'हां! तूने पढ़ाई छोड़ तो दी थी।' उसने मुझे

घूरा, फिर बोला था, 'अब तू ही बता ले... या फिर मुझे बोलने दे।' मैं चुप हो गया, माने सहम गया था। फिर उसने आगे बताना शुरू किया था, 'तूने वो मंदिर तो देखा ही था जहां हम लोग कई बार चले जाते थे।' मैं क्या बोलता, मुझे तो उसने चुप रहने को कहा था। 'उसी मंदिर में पिताजी, बड़े पुजारी के साथ पूजा-पाठ करते थे। मंदिर के साथ दस-बारह बीघा जमीन थी और बड़ी वाली तलैया भी। बड़े पुजारी का कोई आगे-पीछे नहीं था। वे कहां से आए थे, कोई नहीं जानता। पुजारी जी, विनम्र और अच्छे थे। मेरे पिताजी ने एक दिन मुझसे कहा, 'पीता, तू एक काम कर। पढ़ाई तो तेरी हो चुकी। बन गया तू कलक्टर साहब। अब एक काम कर, मेरे साथ मंदिर चला कर। मेरा शरीर शिथिल होने को आया और बड़े पुजारी का कोई भरोसा नहीं। कब भगवान के घर चल दें। बेटा, मंदिर का काम सीख ले।' मुझे भी लगा पिताजी ठीक ही कह रहे हैं। पढ़ लिया जो पढ़ने लायक था। मेरे साथ के सभी लड़के बड़ी-बड़ी क्लास में आ गए थे। तेरा साथ भी नहीं था। तू शहर चला गया था। मैंने पिता जी के आगे समर्पण कर दिया।

मैं मंदिर जाने लगा। रोज सुबह नहा-धोकर मंदिर जाता। मंदिर की सफाई-सुताई करता। मूर्तियों को साफ करता। गंगाजल से नहलाता। उनकी मालाएं बदलता, धूप अगरबत्ती करता और अंत में बड़े पुजारी जी की सेवा करता। वे मुझे आशीर्वाद देते। सिखाते और मेरी सेवा सुश्रुषा से खुश होकर मुझे बेटा भी कहते। वे मेरे पिताजी से हमेशा यही कहते, 'पीताम्बर ही मेरा उत्तराधिकारी बनेगा।' मैं पढ़ ही तो नहीं पाया था। दुनियादारी अब समझ में आने लगी था मेरे। मैं पूरी ईमानदारी और निस्वार्थ भाव से सीखने लगा और... और तभी एक दिन बड़े पुजारी जी चल बसे। मैं खूब रोया था। दुखी भी हुआ और न जाने उस दिन से मुझे क्यों लगने लगा था कि मैं अचानक बड़ा हो गया हूं।

पीताम्बर खड़े-खड़े ही बताए जा रहा था कि अचानक दो बुजुर्ग व्यक्ति आए जो मेरे पिता की उम्र के थे। पीतांबर रुक गया। उन्होंने पीताम्बर के पैर छुए और आशीर्वाद लिया। 'अच्छा ठीक है... ठीक है। अभी जरूरी बात कर रहा हूं। मंदिर आना तब बातें करेंगे।' कहकर उन्हें दूर करने की सोची। वे जब चलने को हुए तब भी उन्होंने उसके पैर बड़े सलीके से छुए।

'क्यों रे! ये दोनों लोग हमारे पिता के तुल्य हैं। तुम साले इनसे पैर छुवाते हो। शर्म नहीं आती।' मेरे इतना कहने पर वह मुस्कुराया, 'मंदिर चलना। इनसे ज्यादा उम्र की माताएं मेरे पैर छूकर आशीर्वाद लेती हैं।'

'और तुझे शर्म नहीं आती। डूब मरो।' मैं बिना वजह ही उखड़ रहा था।

'हो गया तेरा। तूने तो कहा था अपने बारे में बता और अब तू मुझे ही गरिया रहा है। अच्छा पूरी बात सुन ले फिर गाली देता रहियो।' वह विनम्रता से बोला तो मुझे खुद पर गुस्सा आया, 'सॉरी यार।'

'यार भी और सॉरी भी। वाह क्या बात है।' उसने चारों उंगलियों में पहने हुए हीरा मोती की अंगूठियां नचाते हुए कहा था, 'अच्छा सुन आगे।'

मैंने गर्दन हिलाई थी।

'अब पिताजी, मंदिर के बड़े पुजारी थे और मैं उनकी जगह।' उसने आगे के पृष्ठ उलटे, 'पिताजी कमजोर तो थे ही सो मैं ही सारा काम देखता था। मंदिर से लगी दस बीघा जमीन में, फल-फूल, सब्जियां और अनाज उगाने लगा था मैं। दरअसल में कहां काम करता था। ये तो भक्त लोग थे जो करते थे। हां उससे होने वाली आय का मैं अकेला मालिक था।

...मैं बेईमानी नहीं करता था। मैं उसमें से अधिकांश आय मंदिर की देखभाल, नए मंदिर बनाने, चबूतरा बनाने, मूर्तियां खरीदने, रंगरोगन करवाने, भंडारा करवाने में लगाता। लेकिन अपने लिए भी कोई कमी न छोड़ता था। खूब अच्छा खाता, खूब अच्छा पहनता। मेरे परिवार कि स्थिति बहुत अच्छी होने लगी थी। अब पिताजी घर नहीं आते वे मंदिर पर ही रहते। धीरे-धीरे मैंने तालाब भी आधुनिक तरीके का कर लिया। उसका गंदा पानी हर महीने-छह महीने में साफ करवा देता। उसी जमीन में से कुछ हिस्से में मैंने गायें पाल ली। गौशाला बन गई। आज मेरे पास तिहत्तर गायें हैं। बहुत सारे भक्त लोग उनकी देखभाल करते हैं। उनसे होने वाली आय मेरे पास आती है।

घर-परिवार खूब अच्छा चलने लगा तो पिताजी ने मेरी शादी कर दी। पत्नी भी पुजारी की बेटी है। पढ़ने में अच्छी है और होशियार भी।' पीताम्बर बताए जा रहा था कि अब मैंने हिम्मत

की थी, 'अच्छा एक बात बता।'

'पूछो।'

'तुझे ढंग से हिंदी लिखनी, पढ़नी तो आती नहीं थी। मंत्रों के उच्चारण, संस्कृत भाषा... ये सब तू कैसे कर लेता था।' मैं जिज्ञासु बन गया था।

'बड़े पंडित और पिताजी से जितना सीख पाया, सीख लिया था और वैसे भी पुजारी होने के लिए बहुत ज्यादा ज्ञान की जरूरत नहीं होती। कुछ निश्चित बातें होती हैं वे आनी चाहिए। वे मुझे आती थीं। फिर मुझे डांटते हुए बोला था, 'अच्छा ज्यादा सीबीआई का अफसर मत बन। पूरी बात सुन।' और आगे बताने लगा था।

पंडिताइन ने साथ दिया। घर परिवार और अच्छा हो गया और इसी उधेड़बुन में दो बेटे और एक बेटी का बाप भी बन गया। एक दिन ऐसा भी आया जब पिताजी भी छोड़कर चले गए। पिताजी की एक बरस भी नहीं हुई थी कि अम्मा भी छोड़कर चली गई। अब मंदिर की पूरी जिम्मेदारी मेरी और घर की जिम्मेदारी पंडिताइन की। पंडिताइन बहुत नेक और ईमानदार महिला हैं। उन्होंने मुझे ज्ञान की बातें सिखाई। मंत्र और मंत्रों के उच्चारण, उनके अर्थ भी सिखाए। पूजा-पाठ की बेहतरीन विधि भी बताई। अब ये बात और है कि मैंने कितना सीखा। खैर काम चल निकला। बेटी की शादी कर दी। अच्छे घर में ब्याही है। खूब संपन्न है।

'अरे हां यार, मैंने तो पंडिताइन की हर बात बताई लेकिन तूने भाभी के बारे में कुछ नहीं बताया। कैसी है। अच्छा कुछ तो बता।' उसे अचानक न जाने क्या हो गया था।

'तो सुन! तेरी सुनते-सुनते तीन बार मिस्ड काल आ चुकी हैं। बार-बार एक ही बात पूछी है, कहां हो, किसके साथ हो। यार, इतनी शक्की औरत पूरे भारतवर्ष में तो पैदा नहीं हुई होगी। ऑफिस में दस बार फोन करेगी। किसके साथ हो, क्या बातें कर रहे हो। तुम्हारी पीए बदलवा लो, जेंट्स रखवा लो। किसी कार्यक्रम में जाऊंगा तो दस बार पूछेगी। किसी महिला का फोटो मेरे साथ देख लेगी तो पूछेगी, कहां तक बात पहुंची।' मेरा रोना जारी था, 'यार इतना भी कोई शक करता है क्या।'

'यार वह तो प्रिन्सिपल है। फिर भी,' पीताम्बर बोला था।

'यार पहले औरत है फिर प्रिन्सिपल,' मैं बोला।

'अच्छा पंडितानी ऐसी नहीं है। मुझे कहां तक रोकेगी। सुन तुझे मजे की बात बताता हूं। शहर की वे औरतें, लड़कियां जिनकी ओर कोई सभ्य आदमी, अगर देख ले तो वे उसकी आंखें निकलवा लें। वे लड़कियां और औरतें मेरे सामने आकर दण्डवत होती हैं। उनका ऐसा कुछ भी नहीं होता जो मुझसे छिपा रहे। दोनों हाथों से मेरे चरण स्पर्श करती हैं। मैं आशीर्वाद देता हूं। खैर! छोड़ न इन बातों को।' उसने मुझे देखा था।

'अच्छा बता, दोनों बेटे क्या कर रहे हैं।' एक युग के बाद मिले थे हम। सो सब कुछ जान लेना चाहते थे।

'बड़ा बेटा तेरे वहीं, दिल्ली के पास में ही नोएडा की किसी कंपनी, अरे भला-सा नाम बताता है, इन्फो, इन्फो करता रहता है। उसी में मैनेजर है। एमबीए किया था। पिछले आठ साल से है। एक पैसा उससे नहीं लेता मैं। पांच साल से सुन रहा हूं फ्लैट ले रहा है। आज तक तो ले नहीं पाया। एक दिन मैंने उससे कहा भी, ऐसा कर फ्लैट ले ले। सारे पैसे मैं दे दूंगा। आएगा ही कितने का। ज्यादा से ज्यादा अस्सी-नब्बे लाख का। उसने साफ मना कर दिया, 'नहीं पापा, आपकी इस पूजा-पाठ वाली कमाई से नहीं लेना। अपनी मेहनत की कमाई से लूंगा। असल बात ये है कि उसका मानना है कि मैं लोगों को धोखा देकर, अंधविश्वास से पैसा पैदा करता हूं। बहुत दुख होता है। क्या करूं जिद्दी है। मेरे पास पैसे, मान-प्रतिष्ठा की कोई कमी नहीं है लेकिन बेटा.. हार गया मैं उससे।' बताते-बताते वह दुखी होने लगा था।

मैंने उसे ढाढ़स बंधाया था और इतना ही कहा, 'तुम्हारा बेटा बहुत नेक है। उसे मेरी दुआएं भी लगे। अच्छा छोटे वाले के बारे में तो बता।'

'छोटे वाला,' उसने छोटे वाले बेटे के बारे में बताना शुरू किया था, 'वह पढ़ने में बहुत होशियार था। मैंने उसे दसवीं करने के बाद रोक दिया। वह हमेशा कहता, 'पापा कलक्टर साहब बनूंगा। मैं उसे समझाता, 'बेटा कलक्टर साहब से ज्यादा तुझे यहां मान-सम्मान मिलेगा। उससे ज्यादा तेरा जलजला होगा। कलक्टर साहब की पूरी जिंदगी नेताओं, मंत्रियों के तेल लगाने में ही निकल जाती है। मेरे साथ रहो, तुम्हें खूब ताकतवर बना दूंगा। धन-दौलत के अंबार लगे होंगे, नेता, अभिनेता और गुण्डा-बदमाश तेरे चरणों में रहेंगे और तुझे क्या

चाहिए। बेटा मेरी बात मान गया। अब मेरे साथ ही पूजा पाठ में है। मंदिर का सारा लेन-देन, वही देखता है। मंत्र, जाप भी करवाता है। शादी कर दी है उसकी। बहुत बड़े घर की बेटी है। पीएच.डी. है। कस्बे के बीचों-बीच उसकी शानदार कोठी है जिसमें दुनिया की कोई ऐसी सुविधा नहीं, जो न हो। मंदिर को भी माडर्न बना दिया है उसने। दो-तीन लड़के रखे हैं। कंप्यूटर और न जाने क्या-क्या, वाई-फाई करता रहता है। बहू भी उसी का साथ देती है। छोटेवाले के बारे में बताते-बताते वह दुखी होने लगा था, 'लेकिन बड़े बेटे की ओर से चिंता लगी रहती है। न जाने कहां से मेरे घर में जन्म ले लिया। उसे तो तेरे यहां होना चाहिए था।' फिर रुका था, 'हां उसे छोड़कर कोई दुख नहीं। सब कुछ है। धन-दौलत, मान, प्रतिष्ठा।'

'मान-प्रतिष्ठा नहीं साले, तुम और तुम्हारा छोटेवाला समाज को लूट रहे हो। और कुछ नहीं। धर्म की आड़ में माल चीर रहे हो।' मैं बोला था तो वह सीरियस हो गया था, 'अच्छा ऐसे कहोगे।'

मैं सकपका गया था। अपने ऊपर गुस्सा भी आया था। ऐसे न जाने कितने लोग होंगे जो धर्म की आड़ में जाने क्या-क्या नहीं करते हों। तो क्या मुझे अपने मित्र से, जो मुझे एक जमाने के बाद मिला था, उससे कहना चाहिए था। वह कितना निश्छल है, जो सारी बातें मुझे बताए जा रहा था। छी! मैंने उसे अपने गले से लगा लिया था। गला रुंधने लगा था। 'मैं तो ऐसे ही कह रहा था। तू तो यूं ही सीरियस हो गया। हम इतने दिनों से मिले नहीं लेकिन हमारी दोस्ती तो आज भी वैसी ही है।'

'सही बताऊं। तुम ही नहीं, अधिकांश लोग ऐसा ही कहते हैं। लेकिन मैं उनसे एक बात पूछता हूँ। क्या मैं उनसे कहने जाता हूं कि आओ, मंदिर में आओ। भगवान के चरणों में धन-सम्पदा चढ़ाओ। मेरे चरण धो-धोकर पियो। मुझे घर बुलाओ। जिमाओ, कपडे-लत्ते, दान-दक्षिणा दो। सही बताऊं, मोहन, लोग डरे हुए हैं और वही डर उन्हें मंदिर खींच लाता है।' फिर बिल्कुल मेरे मुंह के सामने अपना मुहं करके बोला था, 'तेरे मोहल्लेवाले, अरे! क्या नाम है उसका, आंबेडकर नगर...। हां! आंबेडकर नगर, सबसे ज्यादा वहीं के लोग आते हैं यहां। घर में खाने को अन्न न हो लेकिन यहां चढ़ाने आ जाएंगे। मुझे दुख भी होता है लेकिन क्या करूं। मैं अपने पेट पर लात तो नहीं मार सकता। इतना ही नहीं... तुम्हारे मोहल्ले के लोग, जो बहुत पढ़-लिखकर बड़े-बड़े अफसर बन गए हैं, वे तो जब भी अपने घर आते हैं तो अपनी पत्नी, अम्मा, पिता, भाई-बहिनों, रिश्तेदारों के साथ मंदिर में हजारों रुपये के, भगवान के गहने चढ़ा जाते हैं... कोई भंडारा करवाता है। कोई कुछ तो कोई कुछ। तुम्हारे समाज के लोग आंबेडकर-आंबेडकर तो करते रहते हैं लेकिन अपना सुख खोजने आज भी मंदिरों में ही जाते हैं और विशेष रूप से वे जो ज्यादा आंबेडकर-आंबेडकर करते हैं वे तो जरूर ही आते हैं।' फिर थोड़ा-सा गुस्सा हुआ था मुझ पर, 'मुझे पता चला था, तुम्हारे ही मोहल्ले का कोई लड़का बता रहा था। तुम ब्राह्मणों, मंदिरों, सवर्णों को पानी पी-पीकर कोसते हो... कोसते रहो। मैं रोकूंगा नहीं। लेकिन बता दूँ, तुम्हारे ऐसा करने से...लिखने से कुछ नहीं उखड़ने वाला... तुम मेरे दोस्त हो, बचपन के। तुमसे झूठ नहीं बोलूँगा। तुम्हारा समाज, जो तुम्हारे आंबेडकर का नहीं हुआ। तुम्हारा लिखा हुआ उसे क्या रास्ता दिखाएगा... सच कहूँ, हम ब्राह्मण जरूर हैं लेकिन तुम्हारे आंबेडकर को मैं शीष झुकाता हूं... नमन करता हूँ लेकिन उन्हें कोई ब्राह्मण या सवर्ण स्वीकार करे, तो उससे बड़ा मूर्ख, इस दुनिया में तो होगा नहीं। तुम्हारा समाज... तुम कभी ईमानदार तो बनो, उस महापुरुष के प्रति। ...सच तो यह है कि तुम... तुम्हारा लेखन... तुम्हारा समाज उसके प्रति ईमानदार हो ही नहीं। मुझे ढोंगी कहते हो... असली ढोंगी तो तुम्हारा समाज है।' फिर न जाने उसे क्या हुआ था। मुझे पुचकारते हुए बोला था, 'तुम्हारा आंबेडकर हमारे तैंतीस करोड़ पर बहुत भारी है लेकिन तुम उसे समझ नहीं पाए... काश! तुम उसे समझ पाते।'

पीताम्बर कहे जा रहा था और मैं... मैं तो उल्लू की तरह, उसे देखे चला जा रहा था और उसमें अपना कच्चे एक वाला पीताम्बर खोज रहा था। उसकी बातें मेरे समग्र लेखन, संपूर्ण विद्वता पर भारी पड़ रही थीं।